

वैदिक काल में वाणिज्य एवं व्यापार भारतीय समाज के आर्थिक जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग था। यद्यपि प्रारम्भिक वैदिक समाज (ऋग्वैदिक काल) मुख्यतः कृषि एवं पशुपालन पर आधारित था, तथापि बाद के वैदिक काल में (उत्तर वैदिक काल, लगभग 1000–600 ई.पू.) व्यापार ने संगठित रूप लेना प्रारम्भ कर दिया था। नीचे इसके विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला जा सकता है—

♦ 1. व्यापार की प्रारम्भिक अवस्था (ऋग्वैदिक काल)

जीविका का आधार — प्रारम्भ में समाज कृषि, पशुपालन और विनिमय (barter) पर निर्भर था। वस्तु-विनिमय के माध्यम से आवश्यकताओं की पूर्ति होती थी।

‘पण’ शब्द का प्रयोग मूल्य या मुद्रा के रूप में मिलता है, जिससे स्पष्ट होता है कि लेन-देन का कुछ रूप विकसित हो चुका था।

‘वनिक्’ शब्द व्यापारी के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, जो बताता है कि व्यापार एक विशिष्ट पेशा बन चुका था।

व्यापारिक मार्ग मुख्यतः स्थलीय (भूमि मार्ग) थे और पशुओं के झुंड (विशेषतः बैल, घोड़े, गाय) ही प्रमुख संपत्ति मानी जाती थी।

♦ 2. उत्तर वैदिक काल में व्यापार का विकास

ग्राम और नगरों का उदय होने से व्यापारिक गतिविधियाँ बढ़ीं।

लौह युग के आगमन से कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई, जिससे अधिशेष (surplus) उत्पन्न हुआ और वाणिज्य का विस्तार हुआ।

कारवां (श्रेणी) और व्यापारी संघ बनने लगे, जिन्हें बाद में ‘श्रेणी’ या ‘पुग’ कहा गया।

व्यापार दूरी और दिशा दोनों में बढ़ा — उत्तरी भारत से लेकर तटीय क्षेत्रों तक।

♦ 3. व्यापार के साधन और मार्ग

स्थल मार्ग (Land Routes): आर्यों के विस्तार के साथ व्यापार मार्ग गंगा-यमुना दोआब, मगध और उत्तर-पश्चिम भारत तक फैले।

जल मार्ग (Riverine Trade): नदियों को व्यापार के लिए महत्वपूर्ण माना गया — विशेषतः सरस्वती, सिंधु, गंगा और यमुना।

समुद्री व्यापार (Maritime Trade): यद्यपि सीमित प्रमाण हैं, किंतु कुछ वैदिक सूक्तों में जहाजों (नौका, प्लव) का उल्लेख मिलता है, जिससे यह स्पष्ट है कि आर्य समुद्री यात्रा से परिचित थे।

♦ 4. व्यापारिक वस्तुएँ

आंतरिक व्यापार: अनाज, पशु, वस्त्र, धातु (लोहा, तांबा, सोना, चाँदी), आभूषण, नमक, तेल आदि वस्तुओं का विनिमय होता था।

बाह्य व्यापार: उत्तर वैदिक काल के अंत तक कुछ वस्तुएँ अन्य क्षेत्रों से आयात की जाने लगीं — जैसे घोड़े, बहुमूल्य पत्थर, धातुएँ आदि।

♦ 5. मुद्रा और विनिमय प्रणाली

वस्तु विनिमय प्रचलित था, किंतु धीरे-धीरे 'निष्क', 'शतमान', 'कर्ष' जैसे धातु-आधारित मूल्य-एकक प्रयुक्त होने लगे।

इससे मुद्रा प्रणाली की नींव पड़ी जो आगे चलकर महाजनपद काल में ठोस रूप में विकसित हुई।

♦ 6. व्यापारी वर्ग की स्थिति

व्यापारी (वनिक्) समाज का सम्मानित हिस्सा थे, किन्तु ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों की तुलना में उनका दर्जा निम्न था।

समाज में वैश्य वर्ग का मुख्य कार्य व्यापार, पशुपालन एवं कृषि था — यह वर्ण व्यवस्था में स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट था।

♦ 7. व्यापार से उत्पन्न आर्थिक संगठन

श्रेणी प्रणाली (Guild System) का प्रारम्भिक रूप दिखाई देता है।

राज्य द्वारा कर वसूलना (शुल्क, कर, बलि) प्रारम्भ हुआ।

राजा व्यापार की रक्षा एवं मार्गों की सुरक्षा का दायित्व निभाता था।

♦ 8. सारांश

वैदिक काल में वाणिज्य-व्यापार ने यद्यपि आधुनिक अर्थों में बहुत अधिक विस्तार नहीं पाया, किन्तु इस काल ने भारतीय आर्थिक जीवन में व्यापारिक गतिविधियों की नींव रखी।

विनिमय से लेकर मुद्रा-आधारित लेन-देन, व्यापारी वर्ग के उदय से लेकर मार्गों के विस्तार तक — सबका प्रारम्भ वैदिक युग में ही हुआ।